RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 28 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 13 अक्तूबर, 2019

विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120

दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष-45, अंक : 28, 10-13 अक्तूबर 2019 तदनुसार 27 अश्विन, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

विज्ञानी गुरु

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्त्ररेता वृषभस्तुविष्मान्।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम्।।

-ऋ० ४।५।३

शब्दार्थ-द्विबर्हा = दो में-विद्या और विनय में बढ़ा हुआ **तिग्मभृष्टिः** = तीव्र परिपाकवाला **सहस्त्ररेताः** = अतुल पराक्रमी **वृषभः** = श्रेष्ठ **तुविष्मान्** = बलवान्, **अग्निः** = अग्रणी, अगुआ, **विविद्वान्** = उत्तम विद्वान् **मह्यम्** = मुझे **गोः** = गौ के, इन्द्रिय के, वाणी के, पृथिवी के ज्ञान के **अपगूढम्** = अत्यन्त गुप्त **पदम्** = पद की, ठिकाने की **न** = भाँति **महि** = बड़े **साम** = सिद्धान्त का, सिद्धान्तित कर्म का **उ** = तथा **मनीषाम्** = प्रज्ञा, बुद्धि का **प्र+वोचत्** = श्रेष्ठता से उपदेश करे।

व्याख्या-इस मन्त्र में गुरु के सम्बन्ध में कुछ बातें बताई गई हैं-

(१) 'द्विबर्हा'-विद्यावृद्ध तथा विनयवृद्ध। गुरु भरपूर ज्ञानी होना चाहिए। विद्या के साथ उसमें विनय भी होनी चाहिए। सच्ची विद्या ही वह है जिसके साथ विनय=शान्ति हो-**'विद्या ददाति विनयम्'** = विद्या विनय देती है, अर्थात् उद्धतपन को दूर करती है।

(२) 'तिग्मभृष्टिः'-तीव्र परिपाकवाला, अर्थात् जिसमें अनुभव परिपक्व है, कच्चा नहीं। जो दूसरों का भी तीव्र परिपाक कर सकता हो।

(३) 'सहस्त्ररेताः'-अतुल पराक्रमी। जो शिष्यों के सब अज्ञान दूर करके उनमें ज्ञानाधान कर सकता हो। जिसमें अनन्तवीर्य हो, अर्थात् जिसने ब्रह्मचर्य का पूर्णतया पालन किया हो। योगदर्शनभाष्य [३।३८] में ब्रह्मचर्य का लाभ बतलाते हुए व्यासदेव जी लिखते हैं-**'सिद्धश्च विनयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवति'** = ब्रह्मचर्य में सिद्ध मनुष्य शिष्यों में ज्ञान डाल सकने में समर्थ हो जाता है।

(४) 'अपगूढं विविद्वान्'-जो अत्यन्त गुप्त को भी विशेषतः जानता हो। गुप्त-से-गुप्त रहस्य को जानता हो। प्रत्येक पदार्थ के दो स्वरूप होते हैं-एक सामान्य, दूसरा विशेष। गौ को ले-लीजिए। गौ में एक गोत्व धर्म है, जो सब गौओं में है, जिसके कारण सकल गौओं को एक माना जाता है। इसको 'सामान्य' कहते हैं। इसका कार्य एकता=समता का बोध कराना है। इस धर्म के ज्ञान से मनुष्य एक गौ के देखने से तत्सदृश सभी पदार्थों को गौ मानता है। विशेष भेदबोधक होता है। गोत्व के कारण सभी गौएँ एक होती हुई भी व्यक्तिभेद के कारण परस्पर भिन्न हैं। यह विशेष ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। गुरु को 'विविद्वान्' कहने का प्रयोजन यह है कि गुरु विशेषज्ञ हो। सामान्य तो विशेष के साथ समन्वागत रहता ही है। ऐसा गुरु जो ज्ञान देता है, वह 'साम' सान्त्वना=तसल्ली=शान्ति देने वाला होता है।

(५) 'तुविष्मान्'-बलवान्, अर्थात् शरीरबल में भी हीन न हो। रोगी या दुर्बल शरीर वाला अध्यापन या शिक्षण का कार्य भली-भाँति नहीं कर सकता।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

सदा गावः शुचयो विश्वधायसः।
सदा देवा अरेपसः।।

-पू० ५.२.१.६

भावार्थ-हे प्रभो! जो तेरे सच्चे भक्त हैं, वे अपने तन, मन, धन को, सुपात्र, विद्वान्, जितेन्द्रिय, परोपकारी महात्माओं की सेवा में लगा देते हैं। वस्तुतः ऐसे दानशील और पापाचरण रहित सदा पवित्र, आप प्रभु के भक्त ही देव कहलाने के योग्य हैं। जैसे गौ वा सूर्य की किरणें वा वेदवाणी वा नदियों के पवित्र जल, ये सब पवित्र हैं और इनको परोपकार के लिए ही आपने रचा है, ऐसे ही आपके भक्त भी परोपकार के लिए ही उत्पन्न हुए हैं।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः।।

-पू० ६.१.४.५

भावार्थ-पृथिवी सूर्य आदि सब लोक लोकान्तर और सब ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करने वाला महासमर्थ प्रभु अपने प्यारे धार्मिक और परोपकारी योगी भक्तजनों को प्राप्त होते हैं, अन्य को नहीं।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथावयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम।।

-पू० ६.३.१.४

भावार्थ-हे प्रकाशस्वरूप अविनाशी सत्यकामादि दिव्यगुणयुक्त प्रभो! जो तेरी प्राप्ति और तेरी आज्ञापालन में कठिन-से-कठिन वा साधारण बन्धन हो उसे दूर करो। आपकी सृष्टि के नियम, जो हमारे कल्याण के लिए ही आपने बनाये हैं, उनके अनुसार हमारा जीवन हो। उन नियमों के पालने में हमें किसी प्रकार का दुःख वा हानि न हो। हम सब अपराधों से रहित हुए तेरी भक्ति और तेरी आज्ञापालन में समर्थ हों।

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम।
यो मा ददाति स इदेवमावदहम् अन्नमन्नम् अदन्तमद्मि।।

-पूर्व० ६.६.१.९

भावार्थ-परमेश्वर उपदेश देते हैं कि, हे मनुष्यो! जब वायु आदि भी नहीं उत्पन्न हुए थे तब भी मैं वर्तमान था, मैं ही मोक्ष का दाता हूँ, जो आप ज्ञानी होकर दूसरों को उपदेश करता है, वह अपनी और दूसरे प्राणियों की रक्षा करता हुआ पुरुषार्थ भागी होता है जो अभिमानी होकर दूसरों को उपदेश नहीं करता, उसका मैं नाश कर देता हूँ। दूसरे पक्ष में अलंकार की रीति से अन्न कहता है-कि मैं ही सब देवों से प्रथम उत्पन्न हुआ हूं। जो पुरुष महात्मा अतिथि आदिकों को देकर खाता है, वह अपनी रक्षा करता है। जो असुर केवल अपना ही पेट भरता है, अतिथि आदिकों को अन्न नहीं देता, उस कृपण नास्तिक दैत्य का मैं नाश कर देता हूँ।

सृष्टि के मूल आधार

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

वेदों के अनुसार सृष्टि के मूल आधार ईश्वर, जीव एवं प्रकृति है। इस विषय में वेदों में सौ से भी अधिक मंत्र है। प्रस्तुत लेख में हम उनमें से केवल 28 मंत्रों का उपयोग कर इस मान्यता की सिद्धि करने का प्रयत्न कर रहे है।

ईशा वास्यमिदः सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। यजु. 40.1.

अर्थ-(जगत्याम्) इस ब्रह्माण्ड में (यत् किञ्च) जो कुछ भी (जगत्) परिवर्तनशील है (इदम्) इन (सर्वम्) सबको (ईशा) परमात्मा के द्वारा (वास्यम्) आच्छादित कर देना चाहिये (तेन) इस (त्यक्तेन) त्याग के द्वारा अपना (भुञ्जीथा) पालन पोषण करना चाहिये (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन का (मा गृधः) लोभ मत करो। (स्वामी शंकराचार्य कृत)

इस मंत्र में भी स्पष्ट रूप से ईश्वर, जीव एवं प्रकृति के विषय में ही कहा गया है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकृति द्वारा ही निर्मित है, प्रकृति इसका उपादान कारण है। उसकी सत्ता है। इस ब्रह्माण्ड को आच्छादित करने वाला परमात्मा है। प्रत्यक्ष रूप से जिसे आच्छादित किया जाता है और जिससे आच्छादित किया जाता है वे दो होते है! तीसरा जीवात्मा है जिसके विषय में कहा गया है कि त्याग के द्वारा अपना पालन पोषण कर किसी के धन का लोभ मत कर। किसी के धन का अर्थ है किसी दूसरे जीव का धन, उसका लोभ हम जीवात्मा न करें।

इसी प्रकार ऋग्वेद 1.164.20. में कहा गया है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाः समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्य पिप्पलं स्वाद्वत्य-नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

अर्थ-(द्वा) दोनों (ब्रह्म और आत्मा) (सुपर्णा) सुन्दर पक्षों वाले (सयुजा) एक साथ मिले हुए (सखायाः) मित्र होकर (समानम्) एक ही (वृक्षम्) वृक्ष रूप ब्रह्माण्ड में (परि) सब प्रकार (षस्वजाते) चिपटे हुए हैं। (तयोः) उन दोनों में से (अन्यः) एक जीव (स्वादु) स्वादिष्ट (पिप्पलम्) फल को (अत्ति) खाता है (अनश्नन्) न खाता हुआ (अन्यः) दूसरा परमात्मा (अभि) सब ओर (सृष्टि और प्रलय में) (चाकशीति) चमकता रहता है।

भावार्थ-इस मंत्र में रूपकालंकार है। जीव परमात्मा और जगत् का कारण प्रकृति ये तीन पदार्थ अनादि और नित्य है। जीवात्मा अल्प चेतन और परमात्मा अनन्त चेतन हैं। जीव अल्पज्ञ है परमात्मा सर्वज्ञ है। समस्त जीव पाप पुण्यात्मक कार्यों को करके उनके फलों को भोगते हैं। प्रकृति सत्व, रज और तम तीन प्रकार के कणों का मेल है वास्तव में इन तीन कणों की साम्यावस्था का नाम ही प्रकृति है। सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति ही है, सांख्य दर्शन में इसे विशेष रूप से दर्शाया गया है। ब्रह्म सृष्टि उत्पत्ति के उपरान्त तटस्थ रूप से उसके क्रिया कलापों को देखता रहता है। उसमें हस्तक्षेप नहीं करता है। जीव कर्म करने में स्वतंत्र रहता है।

यस्मिन वृक्षे मध्वद् सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।

तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं नवेद।।

ऋ. 1.164.22.

अर्थ-हे विद्वानों। (यस्मिन्) जिस (विश्वे) समस्त (वृक्षे) वृक्ष पर (मध्वदः) मधु को खाने वाले (सुपर्णाः) सुन्दर पक्षों से युक्त भौंरा आदि पक्षी (नि विशन्ते) स्थिर होते हैं (अधि सुवते च) और आधारभूत होकर बालकों को उत्पन्न करते (तस्य, इत्) उसी के (पिप्पलम्) निर्मल फल को (अग्रे) आगे (स्वादु) स्वादिष्ट (आहुः) कहते हैं और (तत्) वह (न) न (उत् नशत्) नष्ट नहीं होता है और (यः) जो पुरूष (पितरम्) पालने वाले परमात्मा को (न, वेद) नहीं जानता वह इस संसार के उत्तम फल को नहीं पाता।

भावार्थ-इस मंत्र में रूपकालंकार है। अनादि अनन्त काल से यह विश्व उत्पन्न होता और नष्ट होता रहा है! जीव उत्पन्न होते और मरते भी जाते हैं। इस संसार में जीवों ने जैसा कर्म किया वैसा ही ईश्वर के न्याय से भाग्य है, कर्म और जीव का नित्य सम्बन्ध है।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।

स सध्रीचोः स विषूचीर्वसान आ वरिवर्त्ति भुवनेष्वन्तः।।

ऋ. 1.164.31.

अर्थ-मैं (गोपान्) सबकी रक्षा करने (अनिपद्यमानम्) मन आदि इन्द्रियों को न प्राप्त होने और (पथिभिः) मार्गों से (आ, च) आगे और (परा, च) पीछे (चरन्तम्) प्राप्त होने वाले परमात्मा या विचरते हुए जीव को (अपश्यम्) देखता हूँ (सः) वह जीवात्मा (सध्रीचीः) साथ प्राप्त होती हुई गतियों को (सः) वह जीव (विषूचीः) नाना प्रकार की कर्मानुसार गतियों को (वसानः) ढांपता हुआ (भुवनेषु) लोक लोकान्तरों के (अन्तः) बीच (आ वरिवत्ति) निरन्तर अच्छे प्रकार वर्तमान है।

भावार्थ-सबके देखने वाले परमेश्वर के देखने को जीव समर्थ नहीं है। परमेश्वर सबको यथार्थ भाव से जानता है। जैसे वस्त्रों से ढंपा हुआ पदार्थ नहीं देखा जाता है वैसे जीव भी सूक्ष्म होने से नहीं देखा जाता। ये जीव कर्मगति से सब लोकों में भ्रमते हैं इनके भीतर बाहर परमात्मा स्थित हुआ पाप पुण्य के फल देने रूप न्याय से सबको सर्वत्र जन्म देता है।

त्रय सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपिश्रिताः।

स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुहाम्।।

अथर्व. 18.4.4.

अर्थ-(त्रय) तीन (ब्रह्म, जीव और प्रकृति) (सुपर्णाः) सुन्दर पंख वाले पक्षियों के समान (उपरस्य) जल के देने वाले मेघ की (मायू) गर्जन में (नाकस्य) लोकों के चलाने वाले सूर्य के (पृष्ठे) ऊंचे भाग पर और (विष्टपि) विविध प्रकार थामने वाले आकाश में (अधि) अधिकारपूर्वक (श्रिताः) आश्रित हैं। (अमृतेन) अमर परमात्मा के साथ (विष्ठाः) विशेष करके ठहरे हुए (स्वर्गाः) सुख पहुंचाने वाले (लोकाः) समाज (इयम्) ज्ञान को और (उर्जम्) बल को (यजमानाय) यजमान के लिए (दुहाम्) भरपूर करें।

भावार्थ-ब्रह्म, जीव और प्रकृति यह तीनों सब पदार्थों और सब लोकों में व्याप रहे हैं। मनुष्य सर्वनायक परमात्मा के आश्रय में उनके तत्व के स्वरूप का वर्णन करते हुए यजुर्वेद 40.8. में कहा गया है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-मस्नाविरम् शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

अर्थ-(सः) वह आत्मा (स्वयम्भूः) स्वयं उत्पन्न (पर्यगात्) सब ओर गया हुए अर्थात् सर्वव्यापी (अकायम्) अशरीरी (अस्नाविरम्) स्नायु रहित (अपापविद्धम्) निष्पाप (शुक्रम्) शुद्ध वा तेजोमय (अव्रणम्) क्षतरहित (शुद्धम्) पवित्र (कविः) सर्व द्रष्टा (मनीषी) मान का स्वामी (परिभूः) सबके ऊपर रहने वाला है उसने (यथातत्थयतः) वस्तु स्थिति के अनुसार (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) संवत्सर नामक प्रजापतियों के लिए (अर्थान्) कर्त्तव्यों का (व्यदधात्) विधान/विभाजन कर दिया है। (स्वामी शंकराचार्य कृत)

परमात्मा सर्वव्यापक है इस विषय में अथर्ववेद 4.18.2. में कहा गया है-

यतिष्ठति चरति वंचति निलायम् चरति यः प्रतंङ्म्।

द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरूणस्तृतीयः।।

(य तिष्ठति) जो खड़ा है अथवा (चरति) चल रहा है (च) और (यः) जो (वंचति) किसी को ठग रहा है (यः निलायन्) भीतर छुपकर (यप्रतङम्) औरों के जीवन को कष्ट मय बनाता हुआ (चरति) गति कर रहा है (तत्) उन सबको (राजा वरूणः) पाप विनाशक प्रभु (वेद) जानता है (द्वौ) दो पुरूष (संनिषद्य) एकान्त में बैठ कर (यत्) जो (मंत्र, ये ते) मन्त्रणा करते हैं वह राजा वरूण (तृतीय) उन दोनों के साथ तीसरे के रूप में होकर उस सब मन्त्रणा को जान रहा है, अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापी है। सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व प्रलय था। प्रलयावस्था का वर्णन नासदीय सूक्त 10.129. के दो प्रथम मंत्रों में हुआ है-

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।

किमावरीवः कुह कस्यश-र्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्।।

अर्थ-(तदानीम्) सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व (न) न (असत्) अभाव (आसीत्) होता है (नो) और न (सत्) व्यक्त जगत् (आसीत्) होता है। (न) न (रजः) लोक रहता है और (न) न (व्योम) अन्तरिक्ष (आसीत्) रहता है। (यत्) जो आकाश से (परः) ऊपर-नीचे लोक लोकान्तर हैं वे भी नहीं रहते है। (किम्) क्या (आवरीवः) किसको घेरता वा आवृत करता है सब कुछ (कुहकस्य) कुहरान्धकार में (शर्मन्) आवरण में रहता है (गहनम्) गहन (गभीरम्) गहरा (अम्भः) जल (किम्) क्यों कर (आसीत्) रह सकता है।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राज्या अह्न आसीत्प्रकेतः।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।।

ऋ. 10.129.2.

अर्थ-उस अवस्था में न मृत्यु और न नित्य काल का व्यवहार रहता है। दिन और रात्रि का ज्ञापक चिन्ह का व्यवहार भी नहीं होता है। प्रकृति से युक्त कम्पन रहित एक परमेश्वर अपने में स्फूर्तिमान रहता है। उसके समान, उससे भिन्न, उसके अधिक और उस जैसा कोई नहीं रहता है।

सृष्टि का प्रलय कैसे होता है इस विषय में वेद कहता है-

पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्।

आसीन उर्ध्वमुपसि क्षिणाति त्यङ्त्तानामन्वेति भूमिम्।।

ऋ. 10.27.13.

अर्थ-(पत्तः) व्यापक परमेश्वर (जगत्) जगत् को प्रलय काल में निगलता है (प्रत्यञ्चम्) कार्य रूप के उल्टे कारण रूप में हो जावे ऐसा (अत्ति) ग्रहण करता है। (शिरः) प्रकृति में शीर्ण (वरूथम्) परमाणु समूह को (शीर्ष्णा) उत्तम भाग आकाश में (प्रति दधौ) धारण करता है, वह प्रलय करते समय (ऊर्ध्वाम्) ऊपर के लोकों के रूप में विद्यमान प्रकृति को (उपसि) समीप में (आसीनः) स्थित हुआ (क्षिणाति) क्षीण करता है और (उत्तानाम्) उत्तान भूमि को (न्यङ्) नीच से (अनु एति) उसका अनुगामी बनाता है। अर्थात् क्षय करता है।

भावार्थ-व्यापक परमेश्वर प्रलय काल में जगत् को निगल जाता है और कार्य को कारण में ग्रहण करता है। प्रकृति के परमाणु पुंज को आकाश में धारण करता है। प्रलय करते समय ऊपर विद्यमान लोकों और भूमि को क्षीण करता है। इसी प्रकार जीव भी कारण रूप में ईश्वर द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। फिर सृष्टि उत्पत्ति करते समय सबको उगल देता है और ताप द्वारा नई सृष्टि रच देता है जो Big Bang का स्मरण कराता है।

गीर्णं भुवनं तमसा पगूलहमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।

तस्यं देवाः पृथिवी द्यौरूतापो-ऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य।।

ऋ. 10.88.2.

भावार्थ-सृष्टि के पूर्व प्रलय काल

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

सभी आर्य समाजें महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस अवश्य मनाएं

महर्षि दयानन्द का निर्वाण दिवस सम्पूर्ण आर्य जगत् के लिए प्रेरणा का दिन है। यूँ तो दीपावली के पर्व को मनाने की प्रथा सदियों से चली आ रही है, लोग बड़े उत्साह के साथ इस पर्व को मनाते हैं परन्तु महर्षि दयानन्द के निर्वाण की घटना जुड़ जाने से इस पर्व का महत्त्व और भी बढ़ गया है। अब यह केवल दीपावली के रूप में ही नहीं अपितु महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस के रूप में भी सम्पूर्ण आर्य जगत् एवं विदेशों में भी स्थित आर्य समाजों में युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द को याद किया जाता है। इसलिए आर्य समाज से जुड़े सभी महर्षि दयानन्द के अनुयायियों का कर्त्तव्य है कि वे इस दिवस पर महर्षि दयानन्द की विचारधारा को घर-घर पहुँचाने का संकल्प लें और आर्य समाज की उन्नति के लिए कार्य करें। इस वर्ष 27 अक्तूबर 2019 को दीपावली पर्व एवं महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस आ रहा है। हम सभी मिलकर इस पर्व को महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के निर्वाण दिवस के रूप में मनाएं और अधिक से अधिक संख्या में लोगों को आर्य समाज के साथ जोड़े।

हमारी संस्कृति में समय-समय पर आने वाले पर्व हमें एकजुट होने का सन्देश देते हैं। पर्व हमें आपस में समाज के साथ जोड़ कर रखते हैं। ऐसे ही पर्वों की शृंखला में दीपावली का पर्व आता है। दीपावली के पर्व को लेकर लोगों में बहुत उत्साह होता है। महीनों पहले लोग इस पर्व की तैयारियां शुरू कर देते हैं। दीपावली के पर्व का प्राचीन स्वरूप शास्त्रों में शारदीय नवसस्येष्टि के रूप में मिलता है। दीपावली के पर्व को प्राचीन काल से शारदीय नवसस्येष्टि के रूप में ही मनाया जाता था परन्तु समय के साथ अनेक मिथ्या धारणाएं इस पर्व के साथ जुड़ गई। इनमें से एक घटना मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के अयोध्यागमन की है, जो बाल्मीकि रामायण के द्वारा प्रमाणित नहीं होती। इस पर्व पर लोग अपने घरों में नई फसल के आने पर खुशियां मनाते थे और उसे भगवान का प्रसाद समझकर पहले यज्ञ करके उसकी आहुति देते थे। इसीलिए इस पर्व को शारदीय नवसस्येष्टि के रूप में मनाया जाता था। समय के साथ-साथ परिवर्तन हुआ और हम पर्व के शुद्ध स्वरूप को भूलकर केवल दीपक जलाने तक सीमित रह गए।

दीपावली की इस रात्रि का महत्त्व एक महाघटना ने और भी बढ़ा दिया। इसी रात्रि को वेदों का उद्धार करने वाले, आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने अपने नश्वर शरीर का त्याग करके इहलोक से प्रयाण किया था। महापुरूषों का देहावसान साधारण मनुष्यों की मृत्यु के समान शोकजनक नहीं होता अपितु उनका तो प्रादुर्भाव और महाप्रयाण दोनों ही लोककल्याण और आनन्द प्रदान करने के लिए होते हैं। वे परोपकार के लिए प्राणों को अर्पण करते हैं। संसार के सुख के लिए अपने प्राणों की बलि देते हैं। इसलिए जनता उनके बलिदान पर उनकी कीर्ति का कीर्तन और गुणगान करके एक प्रकार का आनन्द अनुभव करती है। उनका बलिदान स्वयं जनता के लिए परोपकारार्थ का उत्तम आदर्श स्थापित करके जनता को उसका अनुसरण करने के लिए प्रेरित करता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज की स्थापना करके समस्त मानव जाति का जो उपकार किया है, महर्षि के उस ऋण को नहीं चुकाया जा सकता। महर्षि दयानन्द ने धार्मिक क्षेत्र में पाखण्ड, मूर्तिपूजा, अन्धविश्वास के ऊपर जमकर प्रहार किया। राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति पर जोर दिया। सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती जी लिखते हैं कि अच्छे से अच्छा स्वदेशी राज्य बुरे से बुरे विदेशी राज्य की कल्पना भी नहीं कर सकता। सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने नारी जाति के उद्धार, विधवाओं की दुर्दशा को सुधारने और बाल विवाह जैसी कुरीतियों को दूर करने पर बल दिया। इसलिए हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम भी महर्षि के ऋण से उऋण होने का प्रयास करें।

आर्य समाज के नियम बनाते समय महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने उनके नियमों में ही आर्य समाज का उद्देश्य निर्धारित किया है। उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए संगठित होने की आवश्यकता है। उन्होंने अपने राष्ट्र का नहीं, आर्य समाज का नहीं अपितु सारे संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य बताया ताकि हम अपने उद्देश्य से भटक न जाएं। महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस पर हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि हम लोगों को आर्य समाज के बारे में जानकारी दें। आर्य समाज के बारे में आम जनता में जो भ्रान्तियां फैल चुकी हैं, उन्हें दूर करने के लिए उन्हें आर्य समाज के सिद्धान्तों से अवगत कराएं। आर्य समाज की स्थापना के पीछे महर्षि दयानन्द जी का यही उद्देश्य था कि समाज में धर्म के नाम पर जो आडम्बर दिखाई दे रहा है, मूर्ति पूजा के कारण जो अन्धविश्वास फैल रहा है, सम्प्रदायवाद के कारण जो लड़ाई झगड़े हो रहे हैं, उन्हें दूर किया जा सके। सत्य सनातन वैदिक धर्म को अपनाकर सभी लोग संगठित होकर विदेशियों की दासता से मुक्त हों। महर्षि दयानन्द किसी नए पन्थ की, मत की स्थापना नहीं करना चाहते थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में लिखते हैं कि- मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूं जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचारित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो-जो आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल चलन है उस का स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उन का त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों तथा शिक्षण संस्था के अधिकारियों से निवेदन है कि वे महर्षि के निर्वाण दिवस को समारोहपूर्वक मनाएं। अपनी-अपनी आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं में कार्यक्रम का आयोजन करके लोगों को वेदों के साथ जोड़ने का प्रयास करें। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा लिखित वैदिक साहित्य एवं अन्य आर्य विद्वानों का वैदिक साहित्य इस अवसर पर बाँटे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब वेद प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से ही वैदिक साहित्य आधे मूल्य पर देती है। वैदिक साहित्य को पढ़ने से ही वेदों का एवं महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार होगा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब सदैव इस कार्य के लिए प्रयासरत है और वेद प्रचार के कार्य में आपका पूर्ण सहयोग करेगी। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने हजारों की संख्या में बाल सत्यार्थ प्रकाश छपवा कर रखे हुए हैं ताकि जिसे बच्चों को बाँट कर वैदिक सिद्धान्तों का अंकुर पैदा किया जा सके। सभी शिक्षण संस्थाओं के अधिकारी प्रयास करें कि बच्चों को वैदिक सिद्धान्तों की जानकारी मिले। ऐसे पवित्र विचारों के उद्घोषक, तथा प्राणिमात्र का हित चाहने वाले, सारे संसार का भला चाहने वाले, वेदों के उद्धारक महर्षि दयानन्द जी का निर्वाण दिवस मनाते हुए हमारा लक्ष्य उनके सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार होना चाहिए। महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस पर हम उनके जीवन से शिक्षा लेकर वेद प्रचार के कार्यों को आगे बढ़ाएं।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं के अधिकारियों से निवेदन है कि अपनी-अपनी आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं को दीपमाला से सुसज्जित करें। दीपमाला के प्रकाश से आर्य समाज के भवनों को प्रकाशित करें। तमसो मा ज्योतिर्गमय अर्थात् अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने का संकल्प लेकर इस पर्व को मनाएं।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

''महर्षि दयानन्द के जीवन की अन्तिम घटनाएँ''

ले.-पं. खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड सन्ज़ १८० महात्मा गान्धी रोड, (दोतल्ला) कोलकत्ता-700007

स्वामी जी जगन्नाथ द्वारा दिया दूध पीकर सो गये तो रात्रि में ही भयंकर उदरशूल से पीड़ित हो उठे। वे जागे और उन्होंने तीन वार वमन किया। कुल्ले कर-कर के देव दयानन्द ने सोने का प्रयास किया। किन्तु वेदना फल स्वरुप उनकी आंख न लग पाई। उदरशूल कम न हुआ व हृदय में घबराहट भी बढ़ती गई। कण्ठ सूखने लगा और दस्तों का क्रम भी आरम्भ हो गया। सर्वप्रथम डॉ. सूर्य मल ने उन्हें दवाई दी और फिर सहायक सर्जन ने। किन्तु दस्तों की संख्या बढ़ती ही गई और हृदय में घबराहट भी। कहा जाता है कि महर्षि की इच्छा के विपरीत सहायक सर्जन ने उपचार आरम्भ किया।

बताया जाता है कि यह सहायक सर्जन डॉ. अली मर्दान, नन्हीं जान का दीवाना था और चाटुकार भी। महर्षि की दुर्बलता बढ़ते-बढ़ते स्थिति अनियन्त्रित हो गई तो स्वामी जी को आबू पर्वत पर भेजने की योजना बनी। 29 अक्तूबर को स्वामी जी को पालकी द्वारा आबू पर्वत पर पहुँचाया गया।

मार्ग में ही अस्पताल के चिकित्सक डॉ. लक्ष्मण दास स्थानान्तरित होकर आबू से अजमेर जा रहे थे कि उन्होंने पालकी में लेटे एक काषाय वस्त्र धारी सन्यासी को देखा और पूछताछ करने पर जब उन्हें विदित हुआ कि यह तो सुप्रसिद्ध सन्यासी देव दयानन्द है तो आपने उनकी नाड़ी देखी और उन्हें मोनिया की थोड़ी-थोड़ी मात्रा तीन बार दी। इस औषधि के फलस्वरूप अचेत महर्षि की चेतना लौटी और उन्होंने लेटे-लेटे नेत्र खोले और बोले ''मुझे किसी ने अमृत दिया है।'' डॉ. लक्ष्मण दास ने भी निश्चय कर लिया कि चाहे नौकरी रहे या जाये, वे स्वामी जी की चिकित्सा करेंगे और वे भी महाराज के साथ ही आबू पर्वत लौट आये। उनकी चिकित्सा से स्वामी जी को काफी लाभ भी हुआ। उनका उदरशूल शान्त हो गया और दस्त बन्द हो गये। 24 अक्तूबर को निद्रा भी आ गयी। पर राजस्थान के मुख्य चिकित्सा अधिकारी कर्नल स्पेन्सर की आज्ञानुसार डॉ. लक्ष्मणदास को अजमेर जाना था किन्तु वे स्वामी जी की सेवा में लगे रहना चाहते थे। उन्होंने दो मास के अवकाश की प्रार्थना भी की, परन्तु कर्नल ने उसे स्वीकार न किया। इस पर उन्होंने सेवा से त्याग पत्र लिख दिया, किन्तु देव दयानन्द ने त्यागपत्र फाड़ कर डॉ. लक्ष्मणदास को अजमेर जाने का आदेश दिया। (नोट-यह है महर्षि देवदयानन्द की महान् उदारता का उदाहरण तथा परहित की चिन्ता)

अन्तत: डॉ लक्ष्मण ने पुन: कर्नल को त्यागपत्र भेजा, किन्तु उसे अस्वीकार करते हुए स्पेन्सर ने कहा कि तुम चिन्ता न करो, मैं स्वयं तुम्हारे गुरू (महर्षि दयानन्द) की चिकित्सा करूँगा। कर्नल की चिकित्सा स्वामी जी को अनुकूल नहीं आई और रोग पुन: उग्र हो गया। यद्यपि महर्षि शरीर की इस विषम स्थिति में भक्तजनों को कष्ट नहीं देना चाहते थे, परन्तु भूपाल सिंह व श्री सेवकराम कर्नलदास आदि के अनुरोध पर २६ अक्तूबर को स्वामी जी ने आबू पर्वत से प्रस्थान किया और अगले दिन चार बजे ब्रह्म मुहूर्त में अजमेर पहुँचे। वहां आगरा दरवाजे के समीप स्थित भिनाई हाउस में उनके विश्राम की व्यवस्था की गई।

डॉ लक्ष्मण दास ने पुन: चिकित्सा आरम्भ की परन्तु स्वास्थ्य में उतार-चढ़ाव दीखते ही रहे। अन्तत: देवदयानन्द को आभास हो गया कि अब इस देह के त्याग की घड़ी सन्निकट है। पूरे शरीर में विष का प्रभाव व्याप्त हो चुका था। छाले भी फैलने लगे थे।

दीपावली से दो दिन पूर्व पं. गुरूदत्त विद्यार्थी एम.ए. और लाला जीवन दास भी महाराज के दर्शनार्थ लाहौर से यहां पहुँच गये और उदयपुर से मोहनलाल विष्णु लाल पांड्या भी उनका कुशल-क्षेम जानने के लिए आ गये।

कार्तिक अमावस्या (30 अक्तूबर, १८८३) को डॉ लक्ष्मण दास ने महाराज के जीवन की सब आशाएं छोड़ दी। अजमेर के सिविल सर्जन डॉ. न्यूमैन बुला लिए गये। उन्होंने स्वामी जी की अवस्था देखकर कहा- ''ये बड़े साहसी तथा सहनशील है।'' इनकी नस-नस और रोम-रोम में रोग का विषैला कीड़ा घुसकर बुलबुलाहट कर रहा है, परन्तु ये प्रसन्न चित है। ऐसे रोग में भी जीते रहना इन्हीं का काम है।

जब डॉ. लक्ष्मण दास ने उन्हें बताया कि ये महापुरुष स्वामी दयानन्द है तो उन्हें अत्यधिक शोक हुआ। एक अन्य मुस्लिम वैद्य पीर जी ने भी स्वामी जी की सहनशीलता देखकर दांतों तले अंगुली दबा ली।

यद्यपि आज के दिन हालत अधिक गम्भीर थी, किन्तु स्वामी जी स्वयं को कुछ अच्छा अनुभव कर रहे थे। ११ बजे चार जनों की सहायता से उठकर शौच से निवृत हुए। उस समय श्वास की गति तीव्र थी। भक्तजनों के प्रश्न करने पर आप बोले ''एक मास के उपरान्त आज का दिन आराम का है।'' जब लाला जीवन दास ने पूछा ''आप कहां हैं?'' तो महाराज बोले ''ईश्वरेच्छा में।''

उपरान्त दो सौ रूपये और दो दुशाले मंगवा कर कहा-ये आत्मानन्द और भीमसेन को दे दो।

सुदूर प्रदेशों से आये सभी ऋषिभक्त शोक विह्वल थे। वे श्रद्धा-भरी भावना सहित महाराज के समक्ष खड़े हो गये। स्वामी जी ने सभी पर कृपा दृष्टि डाली। मानो मौन उपदेश दे रहे हों कि-''भक्तपुरुषों! धैर्य और साहस रखो। अधीर न होओ। उदास होने से क्या लाभ? यह शरीर तो नाशवान् है!''

महाराज के शान्त मुखमण्डल पर किसी शोक या खेद का चिन्ह नहीं। न कोई आह न कराह। उसी समय अलीगढ़ से स्वामी जी के भक्त शिष्य श्री सुन्दर लाल भी आ गये।

5 बजे के पश्चात् स्वामी जी ने समागत भक्तजनों को आदेश दिया कि वे उनके पीछे खड़े हो जाएं और कहा कि ''सभी द्वार और खिड़कियाँ खोल दो।'' फिर पूछा- ''आज कौन सा मास पक्ष और दिवस है?''

एक भक्त ने उत्तर दिया ''भगवन् आज कार्तिक मास, अमावस्या और मंगलवार है।'' यह सुनकर स्वामी जी ने ऊपर दृष्टि डाली। फिर चतुर्दिक ज्योतिपूर्ण दृष्टि से निहारा और वेद मन्त्रों का पाठ किया। तदुपरान्त संस्कृत में ईश्वर स्तुति की। प्रभु गुणगान में रत होकर गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया और शान्त समाधिस्थ हो गये। पुन: नेत्र खोले और ओ३म का उच्चारण कर बोले ''हे दयामय, सर्वशक्तिमान ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो। अद्भुत है तेरी लीला।'' इन शब्दों का उच्चारण कर स्वयं करवट ली। एक बार श्वास को रोका और पुन: सदैव के लिए बाहर निकाल दिया। दीपावली का दिन सायं ६ बजे थे। दयानन्द देहलीला समाप्त कर ज्योतिर्मय की शरण में समर्पित हो गये। भक्तजन निहारते रह गये! पाश्चात्य विज्ञान के विद्यार्थी, ईश्वर के प्रति कुछ कम विश्वास रखने वाले गुरूदत्त विद्यार्थी ने भी महायोगी की यह लीला देखी। गुरूदत्त के मन का अन्धकार नष्ट हो गया। दिव्य ज्योति का अन्त प्रवेश हो गया और वे आज से पूर्ण आस्तिक हो गये।

भक्तजनों के नेत्र अश्रुपूर्ण थे। इस विदाई के दृश्य से उनके हृदयों में एक अदभुत ज्योति का प्रवेश हो रहा था। उनके लिए यह दीप मलिका का अमिट प्रकाश था।

देव दयानन्द धरती के घरौंदे को त्याग कर प्रभु की अनन्त सत्ता में विलीन हो गये थे। पूर्ण प्रभा सहित भारत के गगन पर चमका यह महान् नक्षत्र भावी पीढ़ियों का पथ आलोकित कर अपनी कीर्ति कौमुदी से इस जग में एक अमर सुगन्ध और एक शाश्वत ज्ञान का प्रकाश बिखेर गया था।

अगले दिन इस योगिराज के शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया की तैयारी हुई। शरीर पर चन्दन का लेप किया गया। उनकी शव यात्रा के साथ सहस्त्रों जन चल रहे थे। सभी प्रदेशों के तथा सभी वर्गो के।

अर्थी बहुत बड़ी थी। उनके शव को उठाने के लिए २६ व्यक्ति लगे थे। शमशान भूमि में शव दाह सम्पन्न हुआ। रामानन्द और आत्मानन्द ने यथाविधि अग्न्याधान किया। अग्नि स्पर्श होते ही घृतासिंचित चित्ता ज्वालाओं से आवृत्त हो गई। उस दाह कुण्ड में चार मन घी, पाँच सेर कपूर, एक सेर केसर और दो तोले कस्तूरी डाली गई। चारों ओर से घृत की पुष्कल आहुतियों से हुत श्री महाराज का शव भक्तों के सजल नेत्रों के समक्ष अपने कारणों में लीन हो गया। स्वामी जी की अस्थियों का चयन करके उन्हें शाहपुराधीश के दिए उद्यान में गाड़ दिया। यह उद्यान अन्नासागर के किनारे पुष्कर जाने वाली सड़क पर है।

माण्डूक्योनिषद में ओ३म का चिन्तन

ले.-पं. उम्मेद सिंह विशारद वैदिक प्रचारक

उपनिषदें क्या है-हमारी प्रगति का आधार हमारी प्राचीन संस्कृति व सभ्यता है। आत्म निर्माण व आत्म सुखों की बुनियाद वेदों और उपनिषदों में पायी जाती है। उपनिषदों में ज्ञान के मूल तत्व दिये गये है, जिन्होंने आदि युग के ऊषा काल से अब तक हमारे आध्यात्मिक-धार्मिक-सामाजिक इतिहास को ढाला है और जब-जब हमने ठोकरें खायी तब-तब हमारा उपनिषदों की शिक्षाओं से ही विमुख हो जाना रहा है। आज वेदों और उपनिषदों की शिक्षा पर चल कर ही हम अपनी संस्कृति व सभ्यता को बचा सकते है। उपनिषदें मनन के विषय है। उपनिषदे की रचना भिन्न-भिन्न ऋषियों ने अपने तप द्वारा साधना करके व्यक्त की है।

माण्डूक्योपनिषद में ओ३म का सार

ओमित्येतदक्षरमिंद सर्व तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद भविष्यदिति

सर्वमोकार एव 1 यच्चान्यरित्र कालातीतं तदप्योंकार एव !! (माण्डू)

अर्थात्-"ओ३म" यह एक छोटा सा अक्षर है, परन्तु निखिल संसार इसी एक अक्षर की व्याख्या है। भूत-वर्तमान-भविष्यत-सब ओकांर का ही विस्तार है। जो भूत-वर्तमान या भविष्यत-इन तीनों कालों में नहीं समाता जो त्रिकालातीत है वह भी ओंकार का ही प्रसार है।

सर्व ह्येतद ब्रह्मायमात्मा ब्रह्मं सोरयमात्मा चतुष्पात-!! (माण्डू)

अर्थात्-यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्मांड-ब्रह्मं है, अर्थात् ब्रह्म का विस्तार है। इसी प्रकार में सब का यह पिंड भी ब्रह्म है, अर्थात् जैसे ब्रह्माण्ड् में ब्रह्म का विस्तार है, वैसे ब्रह्म की भांति पिण्ड में जीव का विस्तार शरीर है। आत्मा के अर्थात् ब्रह्मांड में ब्रह्मा का तथा पिंड में जीवात्मा के चार वाद हैं, इन दोनों की अनुभूति के चार स्थान है, चार जगह है, जहां इन्हें पाया जा सकता है।

जागरितस्थानो बहि: प्रज्ञ: सप्तांग एकोनविंशति

मुख: स्थूल भुग्वैश्वानर: प्रथम पाद: (माण्डू)

अर्थात्-आत्मा जीवात्मा तथा ब्रह्म का प्रथम पाद वह स्थान है जिसे हम शरीर तथा प्रकृति की जागृत अवस्था कहते है। शरीर जागृत अवस्था में तभी तो आता है जब जीवात्मा जागृत स्थान में आ बैठता है। जैसे जीवात्मा के जागृत स्थान में आ बैठने पर आँख, कान, वाणी, फेफड़े, हदय तथा पांव ये सात अंग है, वैसे ब्रह्म के विकसित सृष्टि के रुप में प्रकट होने पर अग्नि सिर है, सूर्य चन्द्र आंखें हैं, दिशायें कान है, वेद वाणी है, वायु फेफड़े है विश्व हृदय है, पृथ्वी पांव है।

जीवात्मा की तरह ब्रह्म के भी बहि: प्रज्ञ अवस्था में ये सात अंग है। अत: जागृत स्थान में जीव तथा ब्रह्म दोनों को सप्तांग कहा गया है। अंगों का काम संसार का भोग करना है। भोग का प्रतिनिधि मुख है, जीवात्मा के पास भोग के 19 साधन है, मुख हैं जिनसे ये संसार भोगता है। 5 ज्ञानेन्द्रियां, 5 कर्मेन्द्रियां 5 प्राण ये 15 बाह्य करण तथा 4 अन्त: करण मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार ये 19 मुख है। जिससे जीवात्मा संसार का भोग करता है। वह ब्रह्म भी संसार के सम्पूर्ण प्राणियों के इन 19 मुखों से जागृत स्थान पर बैठ कर बहि: प्रज्ञावस्था में जीवात्मा की तरह इन प्राणियों द्वारा स्थूल संसार का भोग करता है।

सोयामात्मा अध्यक्षर मोङ् कारो अधिमात्रं पादा मात्रा।

मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति!! (माण्डू)

अर्थात्-अक्षरों और मात्राओं से उस आत्म तत्व का वर्णन किया जाये तो उसे ओंकार कहते है। अक्षर और मात्रा में कोई खास भेद नहीं है। अक्षर ही मात्रा है, मात्रा ही अक्षर है। वह अक्षर और मात्रायें "अकार" ऊकार" तथा "मकार" है।

जागरितस्थानो वैश्वायान-रोऽकार: प्रथमा मात्रारप्तेरादिमत्वां।

द्वाप्नोति हवै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद-!! (माण्डू)

अर्थात्: "अकार" प्रथम मात्रा है, यह जीवात्मा तथा ब्रह्म के जाग्रत स्थान की जिसको वैश्वानर शरीर कहा जाता है प्रतिनिधि है। जो जागृत स्थान वाले जीवात्मा को तथा ब्रह्म को जानता है, उसकी उपासना करता है, वह सब कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। वह सब स्थानों में आदि स्थान मुख स्थान प्राप्त करता है। आदि का "अ" ओंकार ही अकार है। ओंकार की आकार मात्रा का ध्यान जागृत स्थान के जीवात्मा तथा ब्रह्म का ध्यान है।

"उकार" उकार द्वितीय मात्रा है, यह जीवात्मा तथा ब्रह्म के स्वप्न स्थान की जिसका "तेजस" शरीर कहा गया है, प्रतिनिधि है। जो स्वप्न स्थान वाले जीवात्मा तथा ब्रह्म को जानता है, उसकी उपासना करता है, उसका उत्कर्ष होता है, वह अपने कुल में तथा समाज में ज्ञान का विस्तार करता है। उत्कर्ष का "उ" ओंकार का उकार है। वह उभय स्थिति प्राप्त करता है। जहां दो पक्ष हो वहां वह दोनों पक्षों में आदर प्राप्त करता है। उसकी दोनों पक्षों के लिये समान स्थिति हो जाती है। उभय का "उ" ओंकार का "उकार" है।

ओंकार की उकार मात्रा का ध्यान स्वप्न स्थान के जीवात्मा तथा ब्रह्म का ध्यान है। जो इस प्रकार "उकार" की उपासना करता है, उसके कुल में अब्रह्मवित्-ब्रह्म को न जानने वाला नहीं होता है। "मकार ओंकार की मकार तृतीय मात्रा है यह जीवात्मा तथा ब्रह्म के सुसुप्त स्थान की जिसको "प्राज्ञ" शरीर कहा गया है, प्रतिनिधि है। जो सुसुप्त स्थान वाले जीवात्मा तथा ब्रह्म को जानता है, उसकी उपासना करता है, वह सम्पूर्ण विश्व को "मिनोति" उसे माप लेता है, उसकी चाह पा जाता है। "मिनोति" का "म" ओंकार का मकार है। वह विश्व की "इति" उसका अन्त भी पा लेता है। जैसे "म" स्पर्श-व्यंजनों का अन्तिम अक्षर है, वैसे सुषुप्तावस्था प्रकृति की "इति" अर्थात् अन्तिम अवस्था है। जो इस प्रकार मकार की उपासना करता है, वह सम्पूर्ण संसार की था पा लेता है, अन्त पा लेता है।

अमात्रश्चतुर्थो अव्यवहार्य: प्रपञ्चोपशम: अशिवो अद्वैत एवमोकार।

आत्मैव संविशत्यात्मन: आत्मानम्: य एवं वेद य एवं वेद!! (माण्डू)

अर्थात्-मात्रा रहित ओंकार चतुर्थ है। जैसे शरीर की जागृत अवस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तावस्था में से निकल कर जीवात्मा अपने चतुर्थ रुप में आ जाता है। जैसे प्रकृति की जागृतवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति-वस्था से निकल कर ब्रह्म अपनी तुरीयवस्था में आ जाता है। वैसे अ-उ-म् इन जागृत-स्वप्न-सुषुप्त अवस्थाओं के प्रतिनिधि तीन मात्रओं से पृथक ओंकार का अमात्र रुप भी है। जो ओंकार के इस रूप को जानता है वह बाहर न भटक कर आत्मज्ञान द्वारा अन्तरात्मा में प्रवेश कर जाता है।

जिस वस्तु को हम नहीं जानते उसके जानने का एक ही उपाय है कि ज्ञात द्वारा हम अज्ञात को जाने। इस उपनिषद में ब्रह्म को जानने के लिये ज्ञात से अज्ञात का आश्रय लिया गया है। हम अपने विषय में कुछ जानते है वह ज्ञात है, जो पिण्ड में है वही ब्रह्मांड में है। अज्ञात को हम पिंड के ज्ञान से जान जाते है। अर्थात् जीवात्मा के ज्ञान से ब्रह्म का ज्ञान हो सकता है।

ओ३म् को मैने जैसा जाना व पहचाना

ओ३म् अपने आप में एक सम्पूर्ण मंत्र है, और संसार के जड़ व चेतन तत्वों में ओ३म् की ध्वनि प्रवाहित हो रही है। ईश्वर में शब्द की उत्पति "अ" से की है, ओ३म् ध्वनि में स्वाभाविक रुप से ध्वनित हो रहा है।

संसार की प्रत्येक बोल-चाल की भाषा में "अ" अवश्य आता है यदि हम कानों को बन्द करके ओ३म् की ध्वनि सुनेंगे और ओ३म् के उच्चारण से हमारे शरीर की सम्पूर्ण नस नाड़ियां सक्रिय हो जाती है। बस आवश्यकता है ओ३म् की ध्वनि संग जुड़ने की बस आत्म शांति का मार्ग केवल ओ३म् जप ही है।

वैदिक अग्नि विज्ञान

ले.-डॉ. प्रतिभा पुरन्धि ईशावास्यम 14812, गोविन्द नगर, अम्बाला छावनी

(गतांक से आगे)

अग्नि ध्वनि वाणी आदि का जनक है-ऐतरेयोपनिषद् में कहा गया है कि 'अग्नि वाणी रूप होकर मुख में प्रवेश कर गया। वेद में कहा- 'एहयूषुब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिर:' साम. 1/1/7 हे अग्ने! मैं तुम्हारे द्वारा ही सब वाणियां बोल लेता हूँ। शि. ग्रन्थ में भी कहा है-

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युंक्ते विवक्षया।

मन: कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारूतम्।।

मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनमति स्वरम्।

अर्थात्-अग्नि के सहयोग से मन रूपी विद्युत शरीर में फैलती है तभी बोलने का सामर्थ्य आता है। यही भाव साम. 1/1/8 मन्त्र में कहा गया।

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्।

अग्ने त्वां कामये गिरा।।

हे अग्ने! वाणी सहित मैं तुम्हें चाहता हूँ।

क्योंकि तुम से ही बोलने वाला मनरूपी विद्युत् पदार्थ उत्कृष्ट हृदय स्थान से फैलता है।

यजुर्वेद 33/15 में कहा है-'श्रुधि श्रुत्कर्ण' हे अग्ने! तुम श्रुत्कर्ण हो अर्थात् तुम में शब्द को ग्रहण करने की क्षमता है। ऋ. 9/41/3 में कहा- 'चरन्ति विद्युतो दिवि' अर्थात् द्युलोक आदि सर्वत्र ही विद्युत् अग्नि प्रवाहित हो रही है।

यजु. 33/53 में कहा-विश्वेदेवा: श्रृणुतेमं हवं मे थे ये ऽन्तरिक्षे यऽ उपद्यविष्ठ।

हे विविध स्थानों में रहने वाले विद्वानों! आप चाहे अन्तरिक्ष में रहो, चाहे द्युलोक में रहो, हमारे वचनों को निकट से सुनो।

ऋ. 1/23/14 में कहा है-पूषा राजानमाधृणिरप गूढ़ गुहाहितम्।।

अविन्दव्यित्र वर्हिषम्

अर्थात् यह अग्नि जिसकी रश्मियां दीप्तिवान् है वह अत्यन्त गुप्त और इन आँखों से बहुत दूर के पदार्थों को भी प्रकट करने में समर्थ होता है।

इन सभी मन्त्रों से सिद्ध है कि हम अग्नि के माध्यम से अप्रत्यक्ष पदार्थों का दर्शन कर सकते हैं, चाहे वे पदार्थ पृथ्वीलोक के हो अथवा द्युलोक तथा अन्तरिक्ष के ही क्यों न हों। अन्तरिक्षस्थ तथा द्युलोकस्थ दूर दूर के व्यक्तियों से भी वार्तालाप कर सकते हैं। आज अग्नि की इस शक्ति के कारण ही एक्सरे, राडार यन्त्र, दूरदर्शन, दूरभाष आदि से हम दूर-दूर तक सम्पर्क और दर्शन करने में सामर्थ्यशील हुए हैं।

यज्ञाग्नि-यज्ञ में जो अग्नि हम प्रज्वलित करते हैं उससे अप्रत्यक्ष लाभ तो होते ही हैं किन्तु प्रत्यक्ष लाभ भी कम नहीं हैं। यह प्राकृतिक प्रदूषणों के साथ साथ औद्योगिक प्रदूषण भी समाप्त करता है। कारखानों से निकलने वाला गन्धक सीसा आदि दूषित रसायन अग्नि में डाले गए गोघृत, ओषधियों और विविध वनस्पतियों से संशोधित होते हैं। ऋग्वेद 10/88/9 में इस रहस्य को स्पष्टत: बताया गया है।

यज्ञाग्नि से ही वृष्टि पर भी नियन्त्रण सम्भव है। वेद में कहा है-निकामे-''निकामे न: पर्जन्यो वर्षतु'' अर्थात् यथासमय वर्षा होनी चाहिए। 'वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्' अर्थात् यज्ञ से ही वृष्टि होती है। 'मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह' यजु.-2/16 अर्थात् गायत्री आदि छन्दों से यज्ञ का अनुष्ठान करके हम लोग अपनी जो इच्छित आहुति अग्नि में डालते हैं वह वायु की नाड़ियों अर्थात् नालियों के तुल्य वायवीय मार्गों से होकर अन्तरिक्ष में विचरण करती हुई द्युलोक में पहुँचती है। वहाँ से आहुति वृष्टि को अच्छी प्रकार लाती है। यजुर्वेद-18/55 में कहा-

विश्वस्य मूर्धन्नधि तिष्ठसि श्रित: समुद्रे ते हृदयमत्स्वायु रपो दत्तोदधि भिन्त।

दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नोवृष्टयाव।। यजु. 18/55

हे अग्ने! तुम वृष्टि से हमारी रक्षा करो, जहाँ-जहाँ जलों की स्थितियाँ हैं वहाँ से वृष्टि लाओ तथा जब-जब रोकने की आवश्यकता हो तो उदधिं भिन्त। उन समुद्रों को जिनसे वर्षा होती है उन्हें नष्ट कर दो।

यजुर्वेद 13/53 में भी कहा है- वृष्टि कराने के लिए मैं जलों को वायु में स्थापित करता हूँ। वर्षा जल के निर्माण में इसके निर्माता तत्वों का क्या अनुपात है? श्री वीरसेन वेदश्रमी यजु. 14/24

मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिवातस्पृत। एक विंशस्तोम:। को प्रस्तुत करते हुए 'एकविंशस्तोम:' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं ''वरुण और मित्र ने एकविंश स्तोम की रचना में जल का निर्माण किया........... द्युलोक या अन्तरिक्ष लोक में जल और वायु का भी जब एकविंश स्तोम 2:1 का अनुपात होता है तब वृष्टि हमें प्राप्त होती है। अर्थात् जब जल का भार अधिक हो जाता है और वायु का भार कम हो जाता है तो वृष्टि जल द्युलोक से पृथ्वी पर आ जाते हैं। जल का भार वायु के भार से अपने आयतन क्षेत्र में दुगुना होने की स्थिति में वृष्टि का होना अनिवार्य है........ वैज्ञानिकों ने जल के दो मूल तत्व हाईड्रोजन और आक्सीजन माने हैं। उनमें से हाइड्रोजन के गुण वरुण के तुल्य हैं और आक्सीजन के गुण मित्र के तुल्य है और दोनों से जल का जो फार्मूला वैज्ञानिकगण लिखते हैं वह H_2O इस प्रकार है। अर्थात् हाइड्रोजन वरुण तत्व 2 भाग और आक्सीजन मित्र तत्व 1 भाग। दोनों संख्याओं का स्तोम-समूह 21 अर्थात् दो और एक (2:1) के अनुपात के रूप में दृष्टिगोचर होता है।''

यजु. 25/28 में भी कहा गया है कि जब होता अध्वर्यु, आदि द्वारा उत्तमोत्तम भावों से विधिविधान से यज्ञ होता है तो उस वृष्टि यज्ञ से नदी, नाले, तालाब, कुएं आदि भर जाते हैं।

यज्ञ से सूखा, आंधी, तूफान, बाढ़ आदि पर भी नियन्त्रण सम्भव है।

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तच धुनिश्च। सासहवांश्चाभियुग्वा च विक्षिप: स्वाहा।। यजु. 39/7

अर्थात उग्र = प्रचण्ड, भीम = भयानक, ध्वान्त = गर्जने वाला, अथवा अन्धकारमय टक्कर मारने वाले विक्षिप = पदार्थों को दूर फैंकने वाले वातों से तूफानों से शान्ति के लिए स्वाहा = हमें यज्ञ करना चाहिए।

यजु. 38/7 में भी कहा-समुद्री वात के लिए, वायु के हर अनावश्यक और विनाशकारी वेग रोकने के लिए हमें यज्ञ करना चाहिए।

यज्ञ और आयुर्वेद-शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि ऋतुओं की सन्धि से व्याधियां उत्पन्न होती हैं इसलिए ऋतु सन्धियों में विशेष भौषज्य यज्ञ करने चाहिए। यजु. 22/18 में कहा गया कि 'हे ओषधियों! हम प्राण, अपान व्यान के लिए तुम्हारा हवन करते हैं। तुम यज्ञ में आओ और हमें आरोग्य प्रदान करो।' 'नवसस्येष्टि जो होली पर्व पर किया जाता है वह भौषज्य यज्ञ ही है। अथर्व 3/11 में स्पष्ट कहा है 'यदि आयु नष्ट हो रही है मृत्यु समीप आ गई है, ऐसी सभी अवस्थाओं में मृत्यु की गोद से निकल कर सौ शरद पर्यन्त जीवन के लिए तेरा यज्ञ एवं हवि से सुसंस्कृत हाथों से तेरा मैंने स्पर्श किया है।

वस्तुत: अग्नि महाशक्तिशाली तत्व है। वेद (साम. 1/2/1/1/7 (103) स्वयं कहता है-हे मनुष्य! तू अग्नि के गुणों का प्रकाश कर जो सबका उपकार करता है। जो जातवेदा है जिसका धुआँ चतुर्दिक व्याप्त हो रहा है और जिसके तेज से लोग अवगत नहीं है।

प्रभु हमें स्वयं सन्देश दे रहा है इस विलक्षण सृष्टि की विलक्षणता को, संसार के प्रत्येक रहस्य को हम समझने का प्रयास करें और अपने कलाकौशल, बौद्धिक बल से इनके द्वारा विविध कार्य लेकर सांसारिक अभ्युदय की ओर अग्रसर हों।

पृष्ठ 2 का शेष-सृष्टि के मूल आधार

में समस्त जगत् अपने कारण रूप में निगला गया हुआ प्रलयान्धकार से ढका रहता है ताप के होने पर वह प्रादुर्भूत होता है तथा इस ताप के सहकार्य से इन्द्र आदि देव पृथ्वी, द्युलोक, जल, अन्तरिक्ष तथा ओषधियां आदि उत्पन्न होते हैं। स्टीफन डबल्यू हाकिंग का मानना है कि यदि सृष्टि उत्पन्न हुई है तो इसका उत्पत्ति कर्ता ब्रह्म है तथा वह निराकार और अनन्त ज्ञान का भण्डार है। उसने योजनापूर्वक सृष्टि की रचना की है।

अभुवौ क्षीर्व्यु आयुरानड्दर्षन्तु पूर्वो अपरो नु दर्षत्।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष।।

ऋ.10.27.7.

भावार्थ-भगवान् अजन्मा और अनादि है। वही जगत् का समय निर्धारित करता और समय पर जगत् के लिए बीज बोता है जो पूर्ववर्ती और पूर्ण है वही कठिनाईयों के विदारण में समर्थ है और दूसरा कोई नहीं है। ये द्यु और पृथ्वी लोक भी परमेश्वर को ढक नहीं सकते क्योंकि वह जगत् से बाहर भी व्यापक हो रहा है।

परमेश्वर एक ही है, इसे अथर्ववेद काण्ड 13 सूक्त 4 अध्याय 2. मंत्र 16-18 में बताया गया है। यहां हम केवल 18वां मंत्र दे रहे हैं-

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। य एतं देवमेकवृतं वेद।।

इसी प्रकार अथर्ववेद काण्ड 13 सूक्त 4 पर्याय। 1मंत्र 4 से 6 तक में कहा गया है कि एक ही ईश्वर के विभिन्न गुणों के कारण विभिन्न नाम हैं-

सोऽर्यमा स वरूणः सरूद्रः स महादेवः। रश्मिभिर्नभ आमृतं महेन्द्र एत्यावृतः।। अथर्व.13.4.

सो अग्निः स सूर्यः स उ एव महायमः। रश्मिभिर्नभ आवृतं महेन्द्र एत्यावृतः।। अथर्व. 13.4. (1), 5 अर्थ सरल है।

अब हम जीव (आत्मा) के विषय में वेद का कथन प्रस्तुत करते हैं-

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देवमाहुः।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद् दधानेन दत्तः।। अथर्व. 9.5.7.

अर्थ-(अजः) अजन्मा जीवात्मा (अग्निः) अग्नि (समान शरीर में) है। (अजम्) जीवात्मा को (उ) ही शरीर के भीतर (ज्योतिः) ज्योति (आहुः) वे विद्वान् बताते हैं और (अजम्) जीवात्मा को (जीवताः) जीते हुए पुरूष करके (ब्रह्मणे) परमेश्वर के लिए (देयम्) देने योग्य (आहुः) कहते हैं। (यद्दधानेन) श्रद्धा रखने वाले पुरूष करके (दत्तः) दिया हुआ (अजः) जीवात्मा (अस्मिन् लोके) इस लोक में (तमांसि) अन्धकारों को (दूरम्) दूर (अप, हन्ति) फैंक देता है।

इसी प्रकार ऋग्वेद 1 सूक्त 58 में मंत्र 1 व 2 में जीव का वर्णन है।

नूचित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः।
वि साधिष्ठेभिः पथिभिः रजो मम आ देवताता हविषा विवासति।।1।।

अर्थ-हे मनुष्यों। (यत्) जो (चित्) विद्युत के समान स्वप्रकाश (अमृतः) स्वस्वरूप से नाश रहित (सहोजाः) बल का उत्पादन करने वाला (होता) कर्मफल का भोक्ता सब मन और आदि का कर्ता (दूतः) सबको चलाने हारा (अभवत्) होता है (देवताता) दिव्य पदार्थो के मध्य में दिव्य स्वरूप (साधिष्ठेभिः) अधिष्ठानों से सहवर्तमान (पथिभिः) मार्गो के (रजः) पृथ्वी आदि लोकों को (नु) शीघ्र बनाने हारे (विवस्वतः) स्वप्रकाश स्वरूप परमेश्वर के मध्य में वर्तमान होकर (हविषा) ग्रहण किये हुए शरीर के सहित (वि तुन्दते) निरन्तर जन्म-मरण आदि में पीड़ित होता और अपने कर्मो के फलों का (विवासति) सेवन और अपने कर्म से (व्याममे) सब प्रकार के वर्तता है वह जीवात्मा है ऐसा जानो।

इसी प्रकार दूसरे मंत्र में कहा गया है कि जो पूर्ण ईश्वर से धारण किया आकाशादि तत्वों में प्रलय कर्ता, सब बुद्धि आदि का प्रकाशक ईश्वर के न्याय नियम से अपने किये शुभाशुभ कर्म के सुख-दुःख स्वरूप फल को भोगता है वह इस शरीर में स्वतंत्रकर्ता जीव है ऐसा जानो।

अथर्ववेद काण्ड 9 सूक्त 5 के सभी मंत्र जीवात्मा का वर्णन कर रहे हैं-

अजारोह सुकृतां यत्र लोका शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः।
पञ्चौदनो ब्रह्मणो दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति।। अथर्व. 9.5.9.

अर्थ-(अज) हे अजन्मा जीवात्मा (यहां) (आरोह) चढ़ कर जा (यत्र) जहां (सुकृताम्) सुकर्मियों का (लोकः) लोक है और (शरभः न) शत्रु नाशक शूर के समान (चतः) प्रार्थना किया गया तू (दुर्गाणि) संकटों को (अति) पार करके (एषः) चल। (सः) वह (ब्रह्मणे) ब्रह्म को (दीयमान) दिया जाता हुआ (पञ्चौदन) पांच भूतों से सींचा हुआ जीवात्मा (दातारम्) दाता (अपने आप) को (तृप्त्या) तृप्ति से (तर्पयाति) तृप्त करे।

इसी प्रकार ऋग्वेद 10.164.4. में जीवात्मा के विषय में कहा गया है-

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहं सुकृतामु लोकम्।।

अर्थ-(जातवेदः) हे विद्वन्। इस मनुष्य देह का जो भाग (अजः) अज और नित्य आत्मा है (तम्) उसको (तपसा) ज्ञान और तप से (तपस्व) तपा (ते) तुम्हारा (शोचिः) तेज (ते) उसे (ते) तेरी (शिवाः) कल्याणकारी (तन्वः) नीति कलेवर है (ताभिः) उनसे (एतम्) इनको (सुकृताम्) उत्तम कर्म करने वालों के (लोकम्) लोक को (उ) निश्चय (वह) प्राप्त करा।

भावार्थ-इस शरीर में जो भाग अजर, अमर है वह आत्मा है।

अथर्ववेद काण्ड 10 सूक्त 10 मंत्र 27 में आत्मा को लिङ्ग रहित माना है-

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जानो भवसि विश्वतोमुखः।।

अर्थ-हे जीवात्मा। (त्वम्) तू (स्त्री) स्त्री (त्वम्) (तू) (पुमान) पुरूष (त्वम्) तू (कुमार) कुमार (उत वा) अथवा (कुमारी) कुमारी (असि) है। (त्वम्) तू (जीर्णः) स्तुति किया होकर (दण्डेन) दण्ड से (वञ्चसि) चलता है। (त्वम्) तू (विश्वतोमुखः) सब ओर मुख वाला बड़ा होकर चतुर होकर (जातः) प्रसिद्ध (भवसि) होता है।

यजुर्वेद 7.3 में कहा गया है कि जीव आप ही स्वयं सिद्ध अनादि रूप है। प्रकृति और पुरूष के मिलने पर ही सृष्टि का कार्य चलता है। बिना प्रकृति की सहायता के और प्रकृति दत्ता शरीर के जीवात्मा कुछ भी कर्म करने में असमर्थ है। कहा जाता है कि जीव लंगड़ा और प्रकृति अंधी है। लंगड़ा जीव अंधी प्रकृति के कंधे पर बैठकर ही अपना कर्म कर सकता है। ऋ. 1.164.37. में इस विषय में कहा गया है-

न वि जानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सनंद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वचो अश्नुते भागमस्या।।

अर्थ-(यदा) सब (प्रथम जा) उपादान कारण प्रकृति से उत्पन्न हुए महत्वादि (मा) मुझ जीव को (मा अगन्) प्राप्त हुए अर्थात् स्थूल शरीर अवस्था हुई (आत् इत्) इसके अनन्तर ही (ऋतस्य) सत्य और (अस्या) इस (वाचः) वाणी के (भागन्) भाग को, विद्या विषय को मैं (अश्नुते) प्राप्त होता हूँ। जब तक (इदम्) इस शरीर को नहीं (अस्मि) होता हूँ तब तक उस विषय को (यदिव) जैसे का वैसा (न) नहीं (विजानामि) विशेषता से जानता हूँ किन्तु (मनसा) विचार से (संनद्ध) अच्छा बंधा हुआ (निण्यः) अन्तर्हित अर्थात् भीतर इस विचार को स्थित किये (चरामि) विचरता हूँ।

सभी प्राणियों को शरीर तो प्रकृति प्रदत्त ही होता है अतः प्रकृति सभी प्राणियों की माता के समान है। ऋ. 10.86.7. में कहा गया है-

नुभे अम्भ सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति।
भसन्मे अम्ब सक्थि में शिरो मे वीर हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।

(नुभे) यह (अम्ब) जगत् की जननी प्रकृति (अङ्ग सुलाभिके) यह अनेक उत्तम लाभों को देने वाली (यथा इव) जैसी कैसी भी (भविष्यति) हो (मे) मुझ जीव की (अम्ब) माता है (मे) मेरी प्रजानन इन्द्रिय (मे) मेरी (सक्थि) जंघा (मे) मेरा (शिरः) शिर उससे (वि इवे) कोकिल पक्षी के समान (हृष्यति) हृष्ट होते हैं। (इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्मात्) समस्त पदार्थों से (उत्तरः) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थ-यह प्रकृति जगत् की जननी लाभकारिणी है और जैसी कैसी भी हो यह मुझ जीव की माता है। क्योंकि इसका सम्बन्ध परमेश्वर से है। मेरी इन्द्रियां इसी से पुष्ट होती है।

वेद में प्रकृति का वर्णन परमेश्वर की पत्नी के रूप में भी हुआ है-

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरणीन्द्र पत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।

ऋ. 10.86.10.

अर्थ-(पुरा) पूर्व समय में (नारी) पुरूष परमेश्वर की पत्नी प्रकृति (संहोत्र) परमेश्वर प्रदत्त निमितत्व एवं बीज शक्ति को (गच्छति) प्राप्त होती है (या) और (समनम् स्म) संसर्ग को प्राप्त करती है और (ऋतस्य) सृष्टि क्रम की (वेधाः) विधात्री (वीरणी) पदार्थों की उत्पादिका (इन्द्र पत्नी) परमेश्वर की पत्नी (महीयते) महत्व को पाती है।

इन्द्र पत्नी प्रकृति कितनी भाग्यवान है इसे निम्न मंत्र व्यक्त कर रहा है-

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।

ऋ. 10.86.11.

भावार्थ-इस विश्व में देखी जाने वाली नारियों में इन्द्राणी प्रकृति को मैं खोजी जीव सबसे अधिक ऐश्वर्यवाली सुनता और मानता हूँ। सबको जीर्ण करने वाले काल से भी इसका पति नाश को प्राप्त नहीं होता है। परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है। परमेश्वर की पत्नी यह प्रकृति भी अज और अनादि है।

परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति क्यों करता है इस विषय में वह अपनी पत्नी प्रकृति को बतलाते हैं-

नाहम इन्द्राणि रराण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते यस्येदमप्यं हविः
प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः। ऋ. 10.86.12.

हे (इन्द्राणि) प्रकृति रानी (अहम्) मैं इन्द्र (सख्युः) मित्र (वृषाकपे) जीवात्मा के (ऋते) बिना (न) नहीं (रशण) इस जगत् में रमता वा इसे व्यक्त करता (यस्य) जिस मुझ इन्द्र का (इदम्) यह जगत् (अप्यम्) प्रकृति के परमाणुओं से बना हुआ (प्रियम्) प्रिय और (हविः) योग्य (देवेषु) इन्द्रियों में (गच्छति) व्याप्त होता है। (इन्द्रः) परमेश्वर प्रभु (विश्वस्मात्) सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्मात्ता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।

यजु. 25.23.

भावार्थ-हे मनुष्यों। आप लोग जो कुछ कार्यरूप जगत् को देखते हो वह अदृष्ट कारण रूप जानो। जगत् का बनाने वाला परमात्मा, जीव, पृथ्वी आदि तत्व जो उत्पन्न हुआ वो जो होगा और जो प्रकृति यह स्वरूप से नित्य है, कभी इसका अभाव नहीं होता और यह भी जानो कि अभाव से भाव की उत्पत्ति कभी नहीं होती है। इस विवरण से यह सिद्ध हो गया कि सृष्टि के मूल आधार ईश्वर जीव और प्रकृति ही है तथा ये तीनों अज और अनादि है।

वेदवाणी

हे मुमुक्षो! तू उसको जान

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभूः रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्।।
-अथर्व० १०।८।४४

ऋषिः-**कुत्सः**।। देवता-**आत्मा**।। छन्दः-**त्रिष्टुप्**।।

विनय-हे मृत्युभय से तर जाना चाहने वाले मुमुक्षो! तू उस एक सर्वव्यापक तत्त्व को देख जोकि सर्वथा 'अकाम' है, जिसमें किसी प्रकार की भी कोई कामना नहीं, अतएव जो कभी भी चलायमान नहीं होता, सदा सर्वथा धीर है; जो कभी न मरेगा और न कभी पैदा हुआ है; जो स्वयं ही अपने आधार से सदा विद्यमान है; जिसे कभी किसी अन्य ने जन्म नहीं दिया, जिस सनातन की सत्ता किसी अन्य के आश्रित नहीं, अतएव जिसकी अमृत सत्ता कभी खण्डित भी नहीं हो सकती, विनाश को नहीं प्राप्त हो सकती; जो आनन्दरस से सर्वथा परिपूर्ण है; हम लोग आनन्ददायक भोजन को यथेष्ट खाकर जैसे कुछ देर के लिए छके हुए, परितृप्ति की अवस्था में रहते हैं वैसी आप्यायित अवस्था में जो सदा, त्रिकाल में रहता है, जो आप्तकाम है; जिसमें कोई किसी प्रकार की कमी, न्यूनता, अपेक्षा व आवश्यकता नहीं है, जो सर्वथा परिपूर्ण है, अखण्ड है, अतएव जो अकाम हुआ है उसे देख, उस एक तत्त्व को देख, उसे पहचान! उस तत्त्व को अपने अन्दर खोज, अपने अन्दर पहचान! वह दीखता है कि नहीं? क्या तू अपने-आपको वैसा अजर, अमर तत्त्व नहीं देखता? जब तू अपने-आपको अचलायमान, कभी बुड्ढा न होने वाला, एकरस, नित्य, हमेशा एक-समान युवा (जवान) देख लेगा तभी-केवल तभी-तू मृत्युभय से पार होगा। उस सच्चे आत्मस्वरूप को देख लेने के पश्चात् तू शरीर नहीं रहेगा। तब तू वही धीर, अजर, अमर तत्त्व हो जाएगा। तब मृत्यु कहाँ रहेगी? तब तो जीने-मरने में कोई भेद नहीं रहता, जीवन-मरण दोनों ही जीवन हो जाते हैं, एक नये प्रकार का नित्य जीवन हो जाते हैं।

हज़ारों मृत्युओं के बीच में भी आत्मा अपनी अमरता को घोषित करता है, परन्तु जब तक इस आत्मस्वरूप का साक्षात् न हो जाए, मनुष्य अपने देह से बिल्कुल पृथक् अपने-आपको अजर-अमर न देख ले, तब तक मृत्युभय नहीं जा सकता। मृत्यु से निर्भय होने का संसार में अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं।

जब तक मनुष्य ने यह आत्मस्वरूप न पा लिया हो तब तक वह चाहे जितना विद्वान्, हज़ारों ग्रन्थों को पढ़ने-पढ़ाने और बनाने वाला हो जाए, उपदेष्टा हो जाए, परन्तु वह उसी प्रकार मृत्यु का मारा हुआ फिरता है जैसे कि एक चीटीं या एक खटमल मरण-त्रास से डरकर भागता है। देखो, वह अखण्ड, एकरस, सर्वथा अकाम, अचल, अमर, अभय नित्यतत्त्व! यदि मृत्यु को जीतना है तो देखो-अपने धीर, अजर, अमृत, आत्मा को।

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठय।।
-उ० १.१.४.२

भावार्थ-हे परमात्मन्! जो आपके प्यारे भक्त जन, अपने हृदय में आपकी प्रेमपूर्वक भक्ति उपासना में तत्पर हैं, उनको ही आपका यथार्थ ज्ञान होता है, उनके हृदय में ही आप अच्छी तरह से प्रकाशित हुए अविद्यादि अन्धकार को नष्ट कर उन्हें सुखी करते हैं, आपकी भक्ति के बिना तो प्रकृति में फँसकर आपकी वैदिक आज्ञा से विरुद्ध चलते मूर्ख संसारी लोग, अनेक नीच योनियों में भटकते-भटकते सदा दु:खी ही रहते हैं।

महर्षि दयानन्द का आगमन

ऋषि दयानन्द के आने से देश का सुधार हो गया।
धुर्त, पाखण्डियों की पोल का साक्षात्कार हो गया।।
अठारह पुराण रचाकर, उन्होंने देश को भरमाया,
अपना स्वार्थ सिद्ध करने का, रास्ता यह अपनाया,
स्त्री, शुद्रों को वेद पढ़ने का नहीं अधिकार बताया,
जिसने गायत्री भी सुन लिया कानों में शीशा डलवाया,
ऋषि जी ने आकर, वेदों का सच्चा अर्थ सुनाया,
सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, वायु, वैसे ही वेद सब का बतलाया,
आज सब वर्ण के स्त्री, पुरुषों को सब विद्या पढ़ने का अधिकार हो गया।
ऋषि दयानन्द के आने से......।।१।।

जाति जन्म से मानी इन्होंने, जिससे देश विरान हो गया,
योग्य पुरुष की उन्नति रुकी, अयोग्य का सम्मान हो गया,
पुरुषार्थ को धक्का लगा, अकर्मण्यता पर ही सबका ध्यान हो गया,
मूर्ख समझे जाने लगे विद्वान, पथ-प्रदर्शन में व्यवधान हो गया,
अविद्या से बढ़ के प्रति कर्त्तव्य के स्थान पर स्वार्थ ही प्रधान हो गया,
देश में धर्म के प्रति कर्त्तव्य के स्थान पर स्वार्थ ही प्रधान हो गया,
गुण, कर्म, स्वभाव से होती है, जाति बताया ऋषि ने,
सबकी उन्नति का खुला द्वार हो गया।
ऋषि दयानन्द के आने से......।।२।।

कितने ही बुरे कर्म करो, राम के नाम मात्र से सब माफ होते है,
सब किये अन्याय, बलात्कार, एक गंगा स्नान से ही साफ होते हैं,
कितने ही झूठे झगड़े करो, एक व्रत रखने से साफ होते हैं,
पत्थर पूजक, तिलकधारी पर, ईश्वर कभी न खाफ़ होते हैं,
ऋषि जी ने वेदों से बताया, सन्ध्या, हवन, योग ही सच्चे जाप होते हैं,
तब आया सद्ज्ञान, सद्विचार, सत्य सनातम वैदिक धर्म का प्रचार हो गया।
ऋषि दयानन्द के आने से.....।।३।।

अपने-अपने स्वार्थ वश ईश्वर की दुर्दशा कर डाली,
कोई कहे राम है ईश्वर, कोई कहे कृष्णा है खाली,
कोई शंकर को ईश्वर कहे, कोई हनुमान, दुर्गा, भैरव, काली,
एक ''ओ३म्'' सर्वशक्तिमान बताया, जो सृष्टिकर्ता और रखवाली,
सब मत-मन्तातर नष्ट हुए, जो फैलाए गये थे झूठे जाली,
वैदन-ज्ञान उदय हुआ, जिससे तुम्हारा जीवन ''खुशहाल'',
नहीं तो जीवन बेकार हो गया।
ऋषि दयानन्द के आने से.....।।४।।

ले.-पं. खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड सन्ज़
१८० महात्मा गान्धी रोड, (दोतल्ला) कोलकत्ता-700007

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
अभि देवाँ इयक्षते।। **-उ० १.१.१.१**

भावार्थ-हे प्रभो! जैसे कोई धर्मात्मा दयालु पिता, अपने पुत्र के लिए, अनेक उत्तम वस्तुओं का संग्रह करके, मन में चाहता है कि मेरा पुत्र योग्य बन जाए, तब मैं इसको उत्तम वस्तुओं को देकर सुखी करूँ। ऐसे ही आप पतित पावन परम दयालु जगत्पिता भी चाहते हैं कि यह मेरे पुत्र, धर्मात्मा होकर मेरा ही पूजन करें, तब मैं अपने प्यारे इन पुत्रों को अपना यथार्थ ज्ञान देकर, मोक्षादि अनन्त सुख का भागी बनाऊँ।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः।। **-उ० १.१.१.३**

भावार्थ-हे महाराजाधिराज परमात्मन्! आप हमारे लिए गौ, अश्वादि उपकारक पशुओं को देकर और उन पशुओं को सुखी करते हुए हमारी रक्षा करें ऐसे ही हमारी पुत्र पौत्रादि सन्तान तथा हमारे प्राण सुखी करें, और हमारे लिए गेहूँ चावल आदि उत्तम अन्न उत्पन्न कर हमें सदा सुखी करें।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**